अपना स्वरूप

(रमेश सिंह पाल)

EDUCREATION PUBLISHING
(Since 2011)
www.educreation.in

समर्पणम्

जब मन में सच जानने की जिज्ञासा पैदा हो जाए तो दुनियावी चीज़े अर्थहीन लगती हैं।

भगवान आदि शंकराचार्य

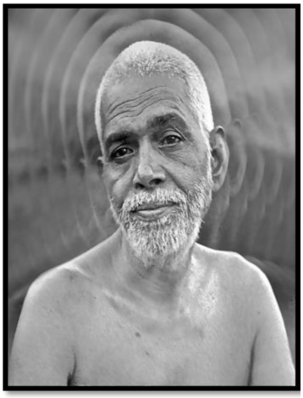

अपने आपको जानो आत्मज्ञान परमोच्च ज्ञान है, सत्य का ज्ञान है।

भगवान रमण महर्षि

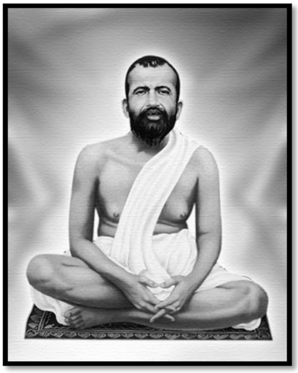

दुनिया के हर तीर्थ धाम कर ले भी तो हमे सुकून नही मिलेगा,
जब तक हम अपने मन में शांति न खोजे।

भगवान रामकृष्ण परमहंस

प्रस्तावना

हमारे जीवन में कुछ अनुभव ऐसे होते है जिनको हम साधारण बुद्धि के द्वारा यदि समझने का प्रयास करते है तो वे अनुभव हमे समझ आने के बजाय हमारे मन पर उल्टा प्रतिघात करते है, लेकिन जब हमारी समझ एक स्तर के उपर चली जाती है तो हमें स्वंत ही जीवन का हर एक अनुभव रोमान्चित कर देता है। सभी लोगों ने अवश्य ही चींटी को देखा होगा। क्या कभी किसी को चींटी देखकर भगवान की याद आयी ? अगर चींटी को देखकर भगवान की याद नही आई तो अभी हमारी समझ बहुत ही निचले स्तर पर है। भौतिक जगत में यदि कोई मनुष्य एक बहुत अच्छी पेन्टिग बनाता है तो हम लोग उसको कितना सम्मान देते है ? कोई भी अच्छी पेन्टिग यदि दिख जाये तो एक दम उसी पेन्टर का नाम दिमाग मे आ जाता है, या फिर जो खिलाड़ी बहुत अच्छा क्रिकेट खेलता है, एक छोटे खिलाड़ी के लिए तो वो भगवान तुल्य बन जाता है, परन्तु क्या कभी हमारा ध्यान उधर भी गया जिसकी शक्ति के कारण एक छोटी सी चींटी से लेकर एक हाथी तथा पेड़, पौधे, जीव जन्तु में यह जीवन चल रहा है। क्या कभी हमने अपने जीवन का विश्लेषण करने का प्रयास किया ? हम साँस अन्दर–बाहर छोड़ रहे है, हमारा हृदय धड़क रहा है। क्या इन चीजों के कारण हममे जीवन है या हममे जीवन है इसलिए ये सभी क्रियाये हो रही है ?

इस प्रकृति में इतनी जटिललाये है कि यदि एक मनुष्य अपना पूरा जीवनकाल भी अगर यह समझने में लगा दे कि एक पेड़ का पत्ता कैसे कार्य करता है तो भी वह सम्पूर्ण रूप से उस पत्ते को नही जान सकता, लेकिन यदि हम इन सभी प्रकृति में घटने वाली घटनाओं के मूल को जान ले तो हमे प्रकृति में घटित होने वाली घटनाओं का स्वंत ही ज्ञान होना शुरू हो जायेगा, उदाहरण के लिए मनुष्य के आँख, नाक, कान, तथा शरीर के अंगों की सत्ता केवल मन से ही है यदि मन नही तो शरीर के किसी

भी अंग की कोई भी गतिविधि नही हो सकती। उसी प्रकार जिसने गंगा जी के उद्दगम को देख लिया उसे सम्पूर्ण गंगा जी को देखने की आवश्यकता नही है।

इस पुस्तक के माध्यम से मैनें अपने कुछ ऐसे ही अनुभव साझा किये है जो हम लोगो को जीवन, जीव, जगत तथा ईश्वर को बारे में सोचने के लिए विवश कर देगे, इस पुस्तक का उदेश्य किसी जाति, धर्म या साम्प्रदाय विशेष को प्रभावशाली ढ़ग से पेश करना नही है, ब्लकि इन सभी मानसिक कल्पनाओं से परे चले जाने से है। यह पुस्तक मेरे लिए एक पुस्तक मात्र नही है, यह मेरे अभी तक के जीवन की उपलब्धि है और इसको मैनें अपने आनन्द को प्रकट करने के लिए संरचनाबद्व किया है।

(रमेश सिंह पाल)

(अध्याय - 1)

अधिकारी कौन?

हमारा जीवन तीन स्तर पर चलता है। पहला है, आदि भौतिक। दूसरा है, आदि दैविक तथा तीसरा है, आध्यात्मिक स्तर। आदि भौतिक जीवन, आदि दैविक के बिना तथा आदि दैविक जीवन, आध्यात्मिक जीवन के बिना अधुरा है। जिस प्रकार अगर कोई मनुष्य अपनी जीवनी लिखे और वह सिर्फ अपने जाग्रत अवस्था के ही बारे मे लिखता है, मतलब उसने सिर्फ अपने सम्पूर्ण जीवन के एक तिहाई भाग की ही कहानी लिखी है बाकी के दो तिहाई भाग में क्या वह जीवित नही था? तो जितनी भी जीवनी हम लोगो ने आज तक पढी वो सब अपूर्ण है, उनका कोई मतलब नही है। जिस प्रकार मान ले हमें कुछ पौधो में शोध करना है, उसमें photosynthasis एंव respiration को study करना है। तो क्या हम केवल दिन (day time) के data आधार पर पर किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकतें है? नही। क्योकि incomplete data हमारे किसी काम का नही। यह सही result नही देगा बल्कि भ्रम पैदा करेंगा उसी प्रकार आदि भौतिक क्षेत्र माने यह संसार या हमारे अनुभव का क्षेत्र, आदि दैविक और आध्यात्मिक क्षेत्र के बिना मनुष्य में भ्रम पैदा करता है।

आदि दैविक क्षेत्र, यह अनुभव होने (experience) का स्तर है। अर्थात अनुभव की प्रक्रिया जैसे यदि हमारी आँखों में जो दृष्ट्रि है वह हो गयी अनुभव की प्रक्रिया या आदि दैविक क्षेत्र तथा तीसरा जीवन का स्तर है आध्यात्मिक स्तर, अब थोड़ा ध्यान देने वाली बात है। आदि भौतिक से आदि दैविक तक ज्यादा तक लोगो की समझ में आ जाता है। परन्तु ज्यादातर लोग आदि भौतिकं को ही सत्य समझ लेते है जबकि यहाँ पर यह समझना बहुत ही जरूरी है, कि आदि भौतिक की सत्ता आदि दैविक की वजह से है तथा आदि दैविक की सत्ता आध्यात्मिक क्षेत्र की वजह से है जैसे मै चश्मा पहनता हूँ। तो क्या चश्मा बाहर का रंग–रूप देख रहा है नही क्योंकि चश्मा अपने लिए तथा अपने आप बाहर की विषय–वस्तुओं को प्रकाशित नही कर रहा है। वह तो आँखों के लिए काम कर रहा है। तो क्या आँखे रंग–रूप को देख रही है? नही। यदि आँखों में

दृष्ट्रि न हो तो चाहे आँखें कितनी ही सुन्दर या स्वस्थ क्यो न हो उनका काई मतलब नही, तो क्या फिर दृष्टि के द्वारा हम बाहर के विषय–वस्तु, रंग–रूप को देख तथा अनुभव कर रहे है? थोड़ा चिन्तन करने से पता चलेगा कि यदि आँखो के पीछे मन न हो तो हम आँखों में दृष्ट्रि होते हुए भी कुछ नही देखते, तो फिर क्या मन सब चीजो का प्रकाशक है? नही मन अपने आप में जड़ है। मन में यदि चैतन्य न हो तो मन कुछ भी नही है।

ऐसा करते–करते हमें यह पता चलता है कि आखिर ये कौन है जिसके कारण आदि भौतिक तथा आदि दैविक क्षेत्र अपना–अपना कार्य कर रहे है? यही क्षेत्र आध्यात्मिक क्षेत्र कहलाता है। मान लिया एक मनुष्य अभी बिल्कूल स्वस्थ है, वह आदि भौतिक तथा आदि दैविक क्षेत्र को देख रहा है, उसमें व्यवहार कर रहा है। दूसरे ही क्षण, उसकी मृत्यु हो जाती है तो आदमी वो ही है उसकी आँखे भी वैसी ही है लेकिन अब उसके लिए आदि भौतिक और आदि दैविक क्षेत्र का कोई मतलब नही है क्योकि आध्यात्मिक क्षेत्र ने देह के द्वारा आदि भौतिक और आदि दैविक क्षेत्र को प्रकाशित करना बन्द कर दिया है।

तो कुल मिलाकर बात यह हो गयी कि इस पुस्तक को पढने के लिए आपको किसी भी तरह के अधिकार की जरूरत नही है। लेकिन इस पुस्तक को समझने तथा इस पर चिन्तन वों ही कर सकता है जो जीवन का अर्थ केवल आदि भौतिक क्षेत्र अर्थात आहार, (खाने–पीने) निद्रा (सोना) भय अर्थातः अपने को संरक्षित करना (देह अभिमान) तथा मैथुन (बच्चे पैदा करना) इन चार बातो के अलावा समझता हो। जो मनुष्य इन चारो (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) को ही जीवन समझता है वह यह पुस्तक को अध्ययन करने का अधिकारी नही है क्योकि इस पुस्तक को समझने के लिए पहले हमे जीवन के बारे में जो हमारी अनगिनत गलत धारणायें है उनको ठीक करना होगा तभी इस पुस्तक में बताई गये तथ्यों को समझा जा सकता है।

ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ

(अध्याय - 2)

पुस्तक का प्रयोजन

एक बार मैंने स्वामी अनुभवानन्द जी के एक सत्संग में वेदान्त के बारे में सुना जिसमें उन्होनें बोला कि हम सभी परमात्मा स्वरूप है। चाहे हम जाने या न जाने, चाहे हम माने या न माने। स्वामी जी ने ये भी बताया कि सभी वेदो का सार उपनिषद है। सभी उपनिषदों का सार भगवतगीता है। उस दिन मेरे मन में अचानक एक संकल्प आया कि मै भगवतगीता का अध्ययन करूगाँ। मैं सबसे पहले श्री राम सुखदास जी रचित गीता प्रेस के द्वारा प्रकाशित श्रीमत भगवतगीता लेकर आया, साथ में वेदान्त बोध किताब भी लाया। तब तक ये दोनों मेरे लिए किताब मात्र थी जैंसी और किताबें होती है। मैंने एक धंटा रोज भगवतगीता का अध्ययन शुरू किया लेकिन मेरी समझ में कुछ नही आ रहा था। बस मै किताब की तरह भगवत गीता का अध्ययन कर रहा था। फिर एक दिन चिन्तन शुरू किया और वेदान्त की किताब, महात्माओं के जीवन चरित्र जैसें बाबा नीम करोंली का जीवन चरित्र, भगवत रमन्ना ऋर्षि के बारे में तथा स्वामी योगानन्द जी महाराज के बारे में पढा लेकिन सभी एक ही बात कह रहे थे कि आप परमात्मा स्वरूप हो बस अज्ञान के द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है। और अज्ञान है, अपना देहआत्म भाव। अगर हमें परमात्मा का अनुभव करना है तो देह को जानना होंगा। यह देह क्या है? और जब हम यह जान लेंगे तो हमें देह से अलग होकर चिन्तन करना होंगा।

मैं बचपन से ही ज्यादा धार्मिक प्रवृत्ति, पूजा पाठ करने वाला नही था। मुझें मन्दिर में भीड़ देखकर, लोगों को भगवान का दर्शन करने के लिए कतार तोड़तें देखकर या फिर भगवान से केवल इच्छाओं की पूर्ति के लिए आग्रह करता देखकर अच्छा नही लगता था। मै सोंचता था कि यदि भगवान इच्छा पूर्ति का साधन मात्र है। तो फिर सबकी इच्छा पूरी क्यों नही होंती बहुत सारे सवाल हमेंशा मन में थे पर इन पर ज्यादा ध्यान नही दिया और जब मैने वेदान्त पढना और समझना शुरू किया तो उसमें पाया कि परमात्मा केवल इच्छा पूर्ति का साधन नही है। मैंने स्वामी विवेकानन्द का जीवन चरित्र पढा। मैंने भगवान रामकृष्ण परमहंस के बारें में पढना शुरू किया। सभी ने इसी

बात का समर्थन किया कि हम परमात्मा स्वरूप है और यह जान लेना ही ज्ञान है, और मोक्ष केवल ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है। जब तक मैनें भगवतगीता पढना शुरू नही किया था मेरे म मे इस जगत को लेकर, अपने आप को लेकर कोई संसय नही था। लेकिन अब मेरे पास सैकड़ों सवाल थे और मेरी जानने की इच्छा तीव्र थी क्योकि जब तक मनुष्य के मन में सवाल नही होंतें, वह जो देखता हैं, अनुभव करता है उसी को सत्य मानता है। परन्तु कुछ सवालों के जवाब हमें इस जगत और जगत की वस्तुओं से परे ले जाते है और जीवन का उद्देशय बन जाते है।

आखिर हम कौन है? विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुं कौन है? यह जगत क्या है? यहाँ पर होने वाले अनुभव क्या हैं? ईश्वर क्या है? वह कैसें सबका नियमन करता है? धर्म क्या है? अधर्म क्या है? उपासना क्या है? भक्ति और उपासना में क्या भेद है? और इन सबका अधिस्ठान (base) हमारा स्वरूप (परमात्मा) कौन है? ऐसे ही बहुत से सवाल थें जो मुझें परेशान कर रहें थे। फिर मैनें निश्चय किया कि मै उन सवालों के जवाब जान कर ही रहूँगा।

मैनें भगवान शंकराचार्य, भगवान रामकृष्ण परमहंस और भगवान रमन्ना ऋर्षि को अपना गुरू बनाया और चिन्तन शुरू किया। मैने पाया कि क्या हम विचार करतें है? या हमारे मन में विचार आतें है। दरसल हम विकारों को विचार का नाम दे देते है। मन में कैसे भी विचार आये और हम सोचते हैं कि हम विचारवान बन गये । ये तो वही बात हुई कि एक बगीचें में जंगल की तरह कैसे भी पेड़–पौधे उग आये और फिर भी हम उसे बगीचा ही कहे। नही, जब तक उस बगीचे में जाकर हमें आनन्द का अनुभव होता है। तभी तक वह बगीचा है अन्यथा वह एक डरावना जंगल है। ठीक उसी प्रकार अगर जिन विचारों के द्वारा हमें आनन्द का अनुभव नही होता, वह विकार है। पहले हमें विचार और विकार तथा चिन्तन और चिन्ता में अन्तर समझना होंगा।

विचारों के द्वारा हम विकारों से मुक्त हो सकते है। चिन्तन के द्वारा हम चिन्ता से मुक्त हो सकते है। इस संसार में हमें हर चीज सीखनी पढती है। चाहें वह रोटी बनाना हो, गाड़ी चलाना हो या कोई भी काम। जब हम इस जगत में आते है, तो हमे कुछ भी नही आता, धीरे–धीरे हम सब सीखते हैं। उसी प्रकार विचार कैसे करना हैं? यह भी सीखना पढता है।

जिन विचारों के द्वारा हम चिन्ता से मुक्त हो जातें है। हमारे मन के प्रश्न शान्त हो जातें है उसे चिन्तन कहते है तथा जिन विचारों के कारण हम अपने आप में ही उलझ जाते है उन्हें विकार या चिन्ता कहते है।

इस पुस्तक में आपकों विचार कैसें करे? यही बताया जायेंगा और जितने भी आपके आध्यात्म को लेकर प्रश्न है सभी का समाधान करने का प्रयत्न किया जायेंगा। जिस प्रकार मेरे मन कें विकार जो बहुत से प्रश्नों के रूप में मेरे सामने थे शान्त हो गये। इस पुस्तक का यही प्रयोजन है कि जो भी आध्यात्म में प्रवेश कर रहे है, जिन्हें अपने स्वरूप को जानने की तीव्र इच्छा है। उनके भी प्रश्नों को शान्त किया जा सके तथा जिनके मन में कोई प्रश्न नही है, उनके सामने बहुत से प्रश्न पैदा किये जा सके, क्यो कि सत्य कुछ और ही है। सत्य इतना सुन्दर है कि शायद हम लोग इसकी कल्पना भी नही कर सकते।

ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ

(अध्याय - 3)

सामान्य गलत अवधारणाये

एक बार एक महिला ने भगवान रमन्ना ऋषि से पूछा, भगवान कई लोग जगत में बहुत ही मृदू भाषी, सरल स्वभाव और परिवार की देखभाल करने वाले होतें है। परन्तु जब उनसें सत्संग की अथवा आध्यात्म की बात करें तो वे यह बातें सुनना ही नही चाहते। ऐसा क्यो ? भगवान कहते है, सत्संग या आध्यात्मिक जगत में मनुष्य की जो मूलभूत गलत अवधारणायें है, उन पर प्रहार होता है। उसने अपने पूरे जीवन मे जिसकों सत्य माना हैं और उसी में जिया है। जब उसे जब बतायां जाता है कि तुम देह नही हो तों उसे लगता है। बाबा जी ये क्या बोल रहे है? यह कैसे हो सकता हैं? इसीलिए वह यह सब सुनना ही नही चाहता है। संसार मे दो जगह आदमी स्वस्थ होने के लिए जाता है। (1) अस्पताल (2) जिम। क्या जितनी भीड़ अस्पताल में होती है उतनी भीड़ जिम में भी होती है? नही। क्योंकि अस्पताल में वो लोग जाते है। जो बीमार है और ठीक होना चाहते है। और जिम में वे लोग जाते है। जो स्वस्थ है और उससे भी ज्यादा बनना चाहते है। उसी प्रकार जो मनुष्य घर को लेकर, पति–पत्नी को लेकर, बच्चों को लेकर दुखी हो जातें है। वही मंन्दिरों मे अपनी मनोकामना पूर्ण करने जाता है। परन्तु जो स्वस्थ है। जिसे कोई इच्छा नही है, वही अपने को जानने के लिए सतसंग या महापुरूषों की शरण में आते है।

उपनिषद कहते है

–"अयं आत्मा बलहीने न लब्या"

यह आध्यात्म बलहीन लोंगो के लिए नही है। बलहीन लोंगो से तात्पर्या है, जो अपनी गलत धारणाओं को बदलना नही चाहते। मुख्यतः हमारी गलत धारणायें 6 प्रश्नो को लेकर है –

1– जींव क्या है?

2– देह क्या है?

3– जगत क्या है ?

4– ईश्वर क्या है?

5– आध्यात्मिक साधना क्यां है?

6–और इन सबका अधिष्ठान कौन है?

इस पुस्तक में इन्ही गलत धारणाओं को समझाने तथा इन धारणाओं के नीचे जो अपना असली स्वरूप छिपा है उसी को जानने का प्रयास किया जायेगा।

महात्माजन कहते है कि किसी भी शास्त्र का अध्ययन हमें स्वंय नही करना चाहिए क्योंकि जब हम व्यवहारिक जगत में किसी अध्यापक से कोई प्रश्न पूछतें है तो वो अध्यापक उस प्रश्न को संम्बोधित करते हुए उत्तर देते है परन्तु आध्यात्मिक जगत में महात्मा जन प्रश्न को संम्बोधित नही करते अपितु प्रश्न पूछने वाले की स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रश्न का उत्तर देते है और वे सिर्फ उत्तर देते है, परन्तु समाधान हमें स्वंय खोजना पड़ता है।

इसलिए उपनिषद में कहा गया है –

तद्विज्ञानार्थंस गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।। मु0,12।।

अगर हमे वास्तव में अपने स्वरूप को जानना है। तो हमें गुरू की शरण में जाना होगा। थोड़ा गुरू शब्द को जान लेते है। यह गुरू क्या है, और गुरू कैसा होना चाहिए? गुरू हमारे हृदय में जिज्ञासा के रूप में प्रकट होते है। हमारे में अपने अनुभवों से सीखनें की क्षमता को गुरू कहते है। जो आदमी अपनी अनुभूतियों से नही सीखता है, उसको साक्षात भगवान भी नही सिखा सकते। हम बड़े प्यार से कहते है,

"कृष्ण बन्दे जगतगुरू"

अगर कृष्ण भगवान जगतगुरू होते तो क्या वो दुर्योधन, धृतराष्ट को नही सिखा सकते थे। इसलिए गुरू और शिष्य के रिश्ते मे शिष्य का महत्व होता है, गुरू का नही।

अगर दूसरा उदाहरण देखे तों एकलव्य को गुरू द्रोणाचार्य ने शिक्षा देने से मना कर दिया, तों क्या वों उसकी सीखने की क्षमता को रोक पाये ? वो फिर भी अर्जुन से श्रेष्ट धनुर्धर साबित हुएं। इसलिए जब तक कोई स्वंय सीखना नही चाहता उसको कोई नही सिखा सकता, और जो जिज्ञासा युक्त होकर जानना चाहता है। उसे जानने से कोई नही रोक सकता।

अगर हम भगवतगीता के प्रथम अध्याय का अवलोकन करें तो उसमें भगवान ने अर्जुन के मन में संसय का बीज डाला। जब अर्जुन कहते है –

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते।
सेनयोरूभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ||गीता, 1-21||

कि हे अच्युत मेरा रथ दोनो सेनांओं के मध्य में ले चलों, मै विरोधी सेना मे देख तो लू कि मुझें युद्व किस से करना है? तब भगवान को तो विकल्प था, कि वों अर्जुन का रथ दुर्योधन, दुशासन के सामने खड़ा करें या भीष्म, द्रोर्णाचार्य के सामने । अगर भगवान अर्जुन का रथ सीधे, दुर्योधन, दुशासन के सामने ले जातें तो अर्जुन के मन में कोई मोह का प्रसंग निर्माण ही नही होता, और युद्व शुरू हो जाता, परन्तु भगवान ने ऐसा नही किया, भगवान ने अर्जुन के मन में मोह का प्रसंग पैदा करने के लिए रथ भीष्माचार्य और द्रोर्णाचार्य के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया और बोले।

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ||गीता, 1-25||

तब अर्जुन कहते है।

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ||गीता, 2-4||

हे भगवान ! मै अपने दादा को और गुरू को कैसे मारू? वैसे उसकों लड़ाई करने में कोई समस्या नही थी, परन्तु मैं अपनो को कैसे मारू? ये समस्या थी। और उसने अपने इस मोह को सही ठहराने के लिए प्रथम अध्याय में भगवान को ज्ञान पढाने करने की भी कोशिश की, परन्तु अर्जुन यह भूल गया कि मै इस रण भूमि मै कौन हूँ। शिष्य हूँ, पोता हूँ, भाई हूँ, या योद्वा हूँ। इसी प्रकार हम इस जगत में आकर यह भूल जाते है

कि हम वास्तव में कौन है और जब–जब भगवान हमारे जीवन में कुछ समस्या ले आते है। तो ये उनका हम पर उनका अनुग्रह होता है। वह समस्या हमें परेशानी में डालने के लिए नही होती, वह एक संकेत होंता है कि हम जाने कि वास्तव में हम कौन है, और सभी समस्याओं से निकल जायें। जब हम अपने अनुभव से सीखना शुरू कर देते है, तो हमारे मन मे अपने बारे में जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। परन्तु यह इच्छा तीव्र व जिज्ञासा पूर्ण होनी चाहिए।

एक बार स्वामी विवेकानन्द जी ने भगवान राम कृष्ण परमहंस से कहाँ कि माँ कालि आप से बात करती है, पर मुझसे नही ऐसा क्यो? भगवान ने कहाँ तुम चाहते ही नही कि माँ कालि तुम से बात करें, जब तुम चाहोगें तो वो तुम से अवश्य बात करेंगी। इस पर स्वामी विवेकानन्द ने कहाँ, मैं चाहता हूँ। भगवान रामकृष्ण बोले नही तुम पूर्ण रूप से नही चाहते हो। तो स्वामी विवेकानन्द बोले पूर्णरूप से चाहना मतलब? भगवान राम कृष्ण बोले चलों इस बारे में बाद मे बात करेंगे, पहले गंगा जी में स्नान करके आते है। और जब स्वामी विवेकानन्द स्नान के लिए गंगा जी में उतरे तब भगवान रामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द का सिर पकड़कर पानी में नीचे दबा दिया, और काफी देर तक दबाकर ही रखा, फिर स्वामी विवेकानन्द ने जोर से झटका मारकर अपना सिंर ऊपर निकाल लिया। तब भगवान रामकृष्ण बोलें देखो नरेंन्द्र जब तुम्हारा सिर पानी के अन्दर था, तो तुम जैसे सांस लेने के लिए तड़प रहे थें, उस समय तुम्हें सांस के अतिरिक्त कुछ भी नही चाहिए था, इसी प्रकार जब तुम्हारी माता की प्रति ऐसी ही तीव्र इच्छा होंगी, माँ तुमसें अवश्य बात करेंगी।

जब हमारे मन में तीव्र इच्छा होंगी अपने आप को जानने की तब हमारे जीवन में भगवान के अनुग्रह से गुरू महाराज का पर्दापर्ण होता है। हमें कभी भी जीवन में गुरू की खोज के लिए भटकना नही चाहिए, गुरू अपने आप आपके जीवन में आ जाते है। गुरू कैसा होना चाहिए? इस पर उपनिषद कहते है**–**

"श्रोव्रियं और ब्रह्मनिष्ठ"

जिन्होने शास्त्रों का अध्ययन किया है। और उसकों अपने जीवन में जियां है। जिसकी निष्ठा ब्रह्म में अकाट्य है। और जिसें जगत में कुछ और सिंद्व नही करना है। वही गुरू आपकों आपकें हित की बात बतायेंगा, अगर हम अपने मन से गुरू की खोज करेंगे तो मन हमेंशा नाम रूप के पीछे दौड़ता हैं, और वह आयोग्य मनुष्य को गुरू मान लेता है। इसलिए आप निरन्तर अपना अन्तःकर्ण शुद्व कीजियें। गुरू भगवान आपके

जीवन में अवश्य आयेंगें, जब आपका अन्तकर्ण शुद्व हो जायेगां। तब तक आप निरन्तर प्रयत्न मे लगें रहे।

ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ————ऊँ